अध्यात्मसूत्र सार्थ

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

सहजानन्द शास्त्रमाला

अध्यात्मसूत्र सार्थ

रचयिता :—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहरजी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

सम्पादक:—
महावीरप्रसाद जैन बैंकर्स
सदर मेरठ

प्रकाशक:—
खेमचन्द जैन सर्राफ
मन्त्री : सहजानन्द शास्त्रमाला,
१८५ ए, रणजीतपुरी,
सदर मेरठ

सन् १९६७] [मूल्य : २५ पैसे

दो शब्द

'अध्यात्म-सूत्र' क्या है इसका वर्णन कठिन है। अध्यात्म रसिया ही इसे जान सकेगा। प्राचीनकालके किसी अध्यात्ममर्मज्ञ आचार्यश्रेष्ठकी रचनाके समान इसका गाम्भीर्य प्रतीत होता है। जैन शास्त्रोंमें सूत्रसाहित्य विपुल नहीं है। सूत्र-साहित्यमें प्राचीनकालमें आचार्य उमास्वामीजीका तत्त्वार्थसूत्र तो अतिविख्यात है ही जिसकी विदेशोंमें भी प्रसिद्धि रही परन्तु आजके इस युगमें इस 'अध्यात्मसूत्र' ने जगत्में एक नवीन प्रभावका सृजन किया है। इसके रचयिता श्री पूज्यश्री वर्णी सहजानन्द महाराजको अध्यात्म रसिकोंने अध्यात्मयोगी कहकर सम्बोधा इसमें कुछ आश्चर्य नहीं।

आत्मरसिक भव्यात्मा पाठक इन सूत्रोंमें निहित अर्थके गंभीर अमृतसिंधुमें जैसे ही प्लावन करने लगेगा वैसे ही वह अलौकिक स्वानन्दकी झलकको पाने लग जायगा, ऐसी सामर्थ्य इन सूत्रोंमें भरी हुई है। यह गागरमें सागर है, बिन्दुमें सिन्धु है।'अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् गूढ़निर्णयः' इस सूत्रलक्षणके अनुसार इसमेंसे प्रत्येक सूत्र अल्प अक्षरवान्, असन्दिग्ध, सारभूत व गूढ़ बातोंका सम्यक् निर्णायक अत्यन्त सूक्ष्म अर्थसे भरपूर है ऐसा नजर आता है। इस पुस्तककी करोड़ों प्रतियां भी वितरीत की जायें तो भी कम हैं। इस 'अध्यात्मसूत्र' पर स्वयं रचायिता ही के द्वारा हुए प्रवचन प्रकाशमें आ चुके हैं चिद्रसानन्दका इच्छुक उनके स्वाध्यायकी भी तीव्र इच्छा करेगा ही। अस्तु! आध्यात्मिक जगत्की अतिसारभूत बातें इस मौलिक ग्रन्थमें निविष्ट हो गयी हैं। यह एक आजीवन अध्यात्म साधनका अपूर्व दीप है। यह ग्रन्थदीप निस्सन्देह निज परमात्माकी उपलब्धिके लिए जागृत हो उठे आत्मसिंहोंको अग्रसर करेगा और अनेक सुप्त भव्योंको सम्यग्बोधके जागृति-जगत्में प्रविष्ट कराकर चिदानंद विश्वमें पहुंचाएगा। सभीको निजपरमात्माका सुपरिचयकी व उसकी उपलब्धि हो। भद्रं भूयात्

क्षु० दयासागर

अध्यात्मसूत्र सार्थ

प्रथम अध्याय

सूत्र–ॐ नमः शुद्धाय ॥१॥

अर्थ– शुद्ध चैतन्यस्वरूपको नमस्कार हो।

सूत्र–निरुपधिस्थितिर्हिता साध्या ॥२॥

अर्थ– उपाधिरहित स्थिति अर्थात् पर द्रव्य व विभावके संयोगसे रहित अवस्था हितरूप है और साधने योग्य (पाने योग्य) है।

सूत्र–तस्याः साधिका निरुपधिदृष्टिः ॥३॥

अर्थ– उस निरुपधि स्थितिकी साधने वाली (सिद्ध करने वाली) निरुपधि दृष्टि अर्थात् उपाधिरहित स्वभावकी दृष्टि है।

सूत्र–तस्याश्च स्वभावपरभावविवेकः ॥४॥

अर्थ– और उस निरुपधि दृष्टिका साधक स्वभाव और परभावका विवेक है।

सूत्र–तस्य च परीक्षा ॥५॥

अर्थ– और उस स्वभावपरभावविवेककी साधिका परीक्षा है।

सूत्र–सा प्रमाणात् ॥६॥

अर्थ– वस्तुस्वभावकी परीक्षा प्रमाणसे होती है।

सूत्र–तस्यांशौ निश्चयव्यवहारनयौ ॥७॥

अर्थ– प्रमाणके अंश दो हैं— (१) निश्चयनय, (२) व्यवहारनय।

सूत्र–स्वाश्रितो निश्चयः ॥८॥

अर्थ– स्व अर्थात् उस ही एक द्रव्यके आश्रयसे जो बोध है वह निश्चय नय है।

सूत्र—पराश्रितो व्यवहारः ॥९॥

अर्थ-- जो पर अर्थके आश्रयसे बोध अथवा निरूपण है वह व्यवहार-नय है।

सूत्र—निश्चयस्त्रेधा ॥१०॥

अर्थ-- निश्चयनय तीन प्रकारका होता है।

सूत्र—अशुद्धशुद्धपरमशुद्धभेदात् ॥११॥

अर्थ-- (१) अशुद्धनिश्चयनय, (२) शुद्धनिश्चयनय व (३) परमशुद्ध-निश्चयनयके भेदसे।

सूत्र—अशुद्धैकदृष्टिरशुद्धः ॥१२॥

अर्थ- अशुद्ध एक पदार्थकी दृष्टि होना अशुद्धनिश्चयनय है।

सूत्र—शुद्धैकदृष्टिः शुद्धः ॥१३॥

अर्थ- शुद्ध एक पदार्थकी दृष्टि होना शुद्धनिश्चयनय है।

सूत्र—पर्यायगुणनिरपेक्षतया सामान्यभावेन द्रव्यदृष्टिः परम-शुद्धः ॥१४॥

अर्थ- पर्याय और गुणकी अपेक्षा किये बिना सामान्यभावसे अर्थात् अभेद स्वभावसे द्रव्यकी दृष्टि होना परमशुद्धनिश्चयनय है।

सूत्र—यथा स्वचतुष्टयस्यैव परिणत्याऽशुद्धो जीव इत्यव-लोकनमशुद्धः ॥१५॥

अर्थ- जैसे अपने चतुष्टयकी ही परिणतिसे अशुद्ध जीव है ऐसा अव-लोकन करना अशुद्ध निश्चयनय है।

सूत्र—शुद्धपरिणतो जीव इति शुद्धः ॥१६॥

अर्थ- जैसे अपने चतुष्टयकी ही परिणतिसे शुद्ध परिणत जीव है ऐसा अवलोकन करना शुद्ध निश्चयनय है।

सूत्र—चिज्जीव इति परमशुद्धः ॥१७॥

अर्थ— चित्स्वभाव अथवा चेतन पदार्थ जीव है ऐसा अवलोकन करना परमशुद्धनिश्चयनय है।

सूत्र—उत्तरान्तर्दृष्ट्यां पूर्वनिश्चयो व्यवहारः ॥१८॥

अर्थ— उत्तरोत्तर अन्तरंगकी दृष्टि होनेपर पूर्व-पूर्वका निश्चय व्यवहार बन जाता है।

सूत्र—सर्वभेदप्रतिषेधगम्यो निश्चय एव ॥१९॥

अर्थ— समस्त गुण और पर्याय विषयक भेद-विकल्पोंके प्रतिषेधसे गम्य वस्तु निश्चयनयका ही विषय है।

सूत्र—निर्विकल्पतया द्रव्यास्यानुभवनमर्थानुभवः ॥२०॥

अर्थ— निर्विकल्परूपसे द्रव्यका अनुभवन होना अर्थानुभव है।

सूत्र—व्यवहारश्चैकादशधा ॥२१॥

अर्थ— तथा व्यवहारनय ११ प्रकारका है।

सूत्र—आश्रयनिमित्तोभयसम्बन्धका उपचरितानुपचरितासद्भूतसद्भूतव्यवहारा अशुद्धशुद्धपरमशुद्धनिरपेक्षशुद्धनिरूपकाश्चेति ॥२२॥

अर्थ— (१) आश्रयसम्बन्धक, (२) निमित्तसम्बन्धक, (३) उभयसम्बन्धक, (४) उपचरितासद्भूत व्यवहार, (५) अनुपचरितासद्भूतव्यवहार, (६) उपचरितसद्भूत व्यवहार, (७) अनुपचरितसद्भूत व्यवहार, (८) अशुद्ध निश्चयनयनिरूपक, (९) शुद्धनिश्चयनयनिरूपक, (१०) परमशुद्धनिश्चयनयनिरूपक, (११) निरपेक्षशुद्धप्ररूपक।

सूत्र—गृहादयो रागादेराश्रयाः ॥२३॥

अर्थ— गृह, धन, चित्र, आदिक रागादि भावके आश्रयभूत हैं।

सूत्र–द्रव्यकर्म निमित्तम् ॥२४॥

अर्थ– द्रव्यकर्म रागादिभावके निमित्तभुत हैं।

सूत्र–नोकर्माभयम् ॥२५॥

अर्थ– शरीर रागादिभावके आश्रयभूत भी हैं और निमित्तभूत भी।

सूत्र–बुद्धिगा रागादय उपचरितासद्भूताः ॥२६॥

अर्थ- बुद्धिमें न आये हुए रागादिक उपचरित असद्भूत हैं।

सूत्र–तेऽन्य अनुपचरितासद्भूताः ॥२७॥

अर्थ-- बुद्धिमें आ सकने योग्य रागादिक अनुपचरित असद्भूत हैं।

सूत्र–मतिज्ञानादय उपचरितसद्भूताः ॥२८॥

अर्थ-- मतिज्ञानादिक उपचरितसद्भूत हैं।

सूत्र–ज्ञानं गुण इत्यादिरनुपचरितसद्भूतः ॥२९॥

अर्थ-- 'ज्ञान गुण है' इत्यादि अनुपचरितसद्भूत हैं।

सूत्र–अशुद्धनिश्चयादीनां प्ररूपणाश्च व्यवहाराः ॥३०॥

अर्थ-- ऊपर कहे गये अशुद्धनिश्चय आदिकोंके प्ररूपण भी व्यवहारनय हैं।

सूत्र–अन्याश्च यावत्यो दृष्टयस्तावन्तो नयाः ॥३१॥

अर्थ-- और भी जितनी दृष्टियां हैं उतने वे सब नय हैं।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानन्दवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे निश्चयव्यवहारप्ररूपकः प्रथमोऽध्यायः।

:——————:

अथ द्वितीयोऽध्याय:

जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकाला द्रव्याणि ।१।

अर्थ-- जातिकी दृष्टिसे द्रव्य ६ हैं-- १ जीव, २ पुद्गल, ३ धर्म, ४ अधर्म, ५ आकाश, ६ काल ।

जीवा अनन्तानन्ताः ।२।

अर्थ-- जीव अनन्तानन्त (अक्षयानन्त) हैं ।

पुद्गलास्ततोऽप्यनन्तगुणाः ।३।

अर्थ-- पुद्गल द्रव्य, जीव द्रव्यके परिमाणसे भी अनन्तगुणे हैं ।

धर्माधर्माकाशा एकैकम् ।४।

अर्थ-- धर्म, अधर्म, आकाश ये तीनों एक-एक अखंड द्रव्य हैं ।

कालाणवोऽसंख्याताः ।५।

अर्थ-- कालद्रव्य (कालाणु) असंख्यात हैं ।

अस्तित्ववस्तुत्वद्रव्यत्वागुरुलघुप्रदेशित्वप्रमेयत्वमयानि सर्वाणि ।६।

अर्थ-- सभी द्रव्य अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरूलघुत्व, प्रदेशवत्त्व व प्रमेयत्व इन छह साधारण गुणोंमय हैं ।

असाधारणगुणमयानि च ।७।

अर्थ-- और वे सभी द्रव्य असाधारण गुणोंमय भी हैं ।

जीवे ज्ञानदर्शनश्रद्धानचारित्रानन्दादयः ।८।

अर्थ-- जीवमें ज्ञान, दर्शन, श्रद्धान, चारित्र, आनन्द आदि असाधारण गुण हैं ।

पुद्गले स्पर्शरसगन्धवर्णाः ।९।

अर्थ-- पुद्गलमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये असाधारण गुण हैं ।

धर्मे गतिहेतुत्वम् ।१०।

अर्थ– धर्म द्रव्यमें गतिहेतुत्व (जीव पुद्गलोंकी गतिमें निमित्त होना) असाधारण गुण है।

स्थितिहेतुत्वमधर्मे ।११।

अर्थ– अधर्मद्रव्यमें स्थितिहेतुत्व (जीव पुद्गलोंके ठहरने निमित्त होना) असाधारण गुण है।

अवगाहहेतुत्वमाकाशे ।१२।

अर्थ– आकाशद्रव्यमें सर्व द्रव्योंके अवगाहका हेतुत्व होना असाधारण गुण है।

परिणमनहेतुत्वं काले ।१३।

अर्थ-- कालद्रव्यमें सर्वद्रव्योंके परिणमनका हेतुत्व होना असाधारण गुण है।

स्वस्वपरिणत्यैव द्रव्याणि परिणमन्ते ।१४।

अर्थ-- अपने-अपने चतुष्टयकी परिणतिसे ही सर्व द्रव्य परिणमते हैं।

भेददृष्ट्या गुणाश्च ।१५।

अर्थ-- भेददृष्टिसे गुण भी अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते हैं।

अत्यन्ताभाववदन्वयव्यतिरेकसम्बन्धावच्छिन्नानीतराणि निमित्तानि ।१६।

अर्थ-- अत्यन्ताभाववाले व अन्वय व्यतिरेक सम्बन्धसे युक्त इतर पदार्थ निमित्तमात्र हैं।

यस्मिन् सत्येव परिणतिः सोऽन्वयः ।१७।

अर्थ– जिसके उपस्थित होनेपर ही उपादानमें परिणति हो उनका वह सम्बन्ध अन्वयसम्बन्ध है।

नासति व्यतिरेकः ।१८।

अर्थ– जिसके उपस्थित न होने पर उपादानमें परिणति न हो उनका वह सम्बन्ध व्यतिरेक सम्बन्ध है।

विवक्षितं परिणममानमुपादानम् ।१९।

अर्थ– परिणमता हुआ विवक्षित पदार्थ उपादान कहलाता है।

यथा रागादेरुपादानमशुद्धपरिणतो जीवः ।२०।

अर्थ– जैसे रागादिकभावका उपादान अशुद्ध परिणतिसे परिणत जीव है।

निमित्तानि च कर्माणि ।२१।

अर्थ– और रागादिभावके निमित्त कर्म हैं।

ज्ञानस्य पर्याया मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि कुमतिश्रुतावधयश्च ।२२।

अर्थ– ज्ञान गुणकी पर्यायें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, केवलज्ञान और कुमति कुश्रुत कुअवधिज्ञान हैं।

दर्शनस्य चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानि ।२३।

अर्थ– दर्शन गुणकी पर्यायें चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन व केवलदर्शन हैं।

श्रद्धानस्यौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकसम्यक्त्वानि मिथ्यात्वसासनसम्यग्मिथ्यात्वानि ।२४।

अर्थ– श्रद्धान गुणकी पर्यायें औपशमिकसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सासादन व सम्यग्मिथ्यात्व है।

चारित्रस्यानन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभा हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदा अकषायभावश्च ।२५।

अर्थ- चारित्र गुणकी पर्यायें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद व अकषाय भाव हैं।

आनन्दस्यानन्दसुखदुःखानि ।२६।

अर्थ- आनन्द गुणकी पर्यायें आनन्द, सुख व दुःख हैं।

स्निग्धरूक्षशीतोष्णगुरुलघुमृदुकठोराणि स्पर्शस्य ।२७।

अर्थ-- स्पर्श गुणकी पर्यायें स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, गुरु, लघु, कोमल व कठोर हैं। इनमेंसे परमाणुमें तो स्निग्ध, रूक्ष, शीत व उष्ण पर्यायें ही हो सकती हैं, स्कन्धमें आठों पर्यायें संभव हैं।

रसस्याम्लमधुकटुतिक्तकषायिताः ।२८।

अर्थ-- रस गुणकी खट्टा, मीठा, कड़ुवा, तीखा व कषायला पर्यायें हैं।

सुरभिदुरभयो गन्धस्य ।२०।

अर्थ-- सुगन्ध व दुर्गन्ध गन्ध गुणकी पर्यायें हैं।

कृष्णनीलपीतरक्तश्वेता वर्णस्य ।३०।

अर्थ- काला, पीला, लाल, सफेद ये वर्णगुणकी पर्यायें हैं।

रागादयोऽशुद्धनिश्चयेनात्मनः ।३१।

अर्थ-- रागादि भाव अशुद्ध निश्चयनयसे आत्माके हैं।

निमित्तापेक्षया व्यवहारेण वा कर्मणाम् ।३२।

अर्थ- निमित्तकी अपेक्षासे अथवा व्यवहारनयसे रागादिभाव कर्मों के हैं।

शुद्धनयेन सन्त्येव न ।३३।

अर्थ-- शुद्ध निश्चयनयसे रागादिक हैं ही नहीं।

प्रथमक्षणस्थकैवल्यस्य निमित्तं कर्मक्षयः ।३४।

अर्थ-- प्रथम क्षणमें हुई कैवल्य अवस्थाका निमित्त कर्मका क्षय है।

उपादानं शुद्धात्मा ।३५।

अर्थ-- कैवल्य अवस्थाका उपादान शुद्ध आत्मा है।

निश्चयेनात्मजम् ।३६।

अर्थ-- वह कैवल्यपरिणमन निश्चयसे आत्मज (आत्मासे हुआ) है।

व्यवहारेण क्षायिकम् ।३७।

अर्थ-- वह कैवल्यपरिणमन व्यवहारनयसे क्षायिक (कर्मक्षयसे हुआ) है।

अनन्तरवर्तिशुद्धीनामुपादानं शुद्धात्मा ।३८।

अर्थ-- उसके अनन्तर होने वाली शुद्ध परिणतियोंका उपादान शुद्ध आत्मा है।

निमित्तं कालमात्रम् ।३९।

अर्थ-- अनन्तर होते रहने वाली शुद्ध परिणतियोंका निमित्त मात्र कालद्रव्य है।

सम्यक्त्वाविर्भावस्योपादानं श्रद्धालुः ।४०।

अर्थ-- सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका उपादान श्रद्धान करने वाला आत्मा है।

श्रोतृश्रद्धाज्ञानित्वाप्तवस्त्वनुदेशकदेशना निमित्तम् ।४१।

अर्थ-- श्रोताकी श्रद्धामें ज्ञानीपनको प्राप्त तथा वस्तुस्वरूपके अनुरूप उपदेश करने वाले गुरूकी देशना निमित्त है।

विम्बदर्शनादीनि च ।४२।

अर्थ-- और जिनबिम्बदर्शन, वेदनानुभवन आदि भी सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य कारण हैं।

एवमन्येष्वपि प्रयोज्यम् ।४३।

अर्थ-- इसी प्रकार अन्य द्रव्योंके सम्बन्धमें भी नय विभाग, निमित्त, उपादान, स्वामित्व आदि लगा लेना चाहिए।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानन्दवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे निश्चयव्यवहारप्ररूपकः द्वितीयोऽध्यायः।

अथ तृतीयोऽध्यायः

परिणममानः कर्ता ॥१॥

अर्थ- जो परिणम रहा है वह कर्ता है।

परिणामः कर्म ॥२॥

अर्थ- जो परिणाम (वर्तमान वर्तन) है वह कर्म है।

परिणतिः क्रिया ॥३॥

अर्थ- जो परिणति है, परिणमन (क्रिया) है, वह क्रिया है।

इति वस्तु स्वस्यैव स्वक्रिययैव स्वयं कर्ता ।४।

अर्थ- इस प्रकार वस्तु अपनी क्रिया ही के द्वारा अपना ही स्वयं कर्ता होता है।

अन्यन्निमित्तमात्रम् ॥५॥

अर्थ- परिणमते हुए द्रव्यके अतिरिक्त अन्य अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध वाले द्रव्य निमित्तमात्र हैं।

निमित्तं प्राप्योपादानं स्वप्रभाववत् ।६।

अर्थ- निमित्तको पाकर उपादान अपने प्रभाववाला होता है।

एष परिणममानद्रव्यस्वभावः ॥७॥

अर्थ– यह परिणमते हुए द्रव्यका स्वभाव ही है कि निमित्तको पाकर उपादान अपने प्रभाववाला होता है।

परिणामो द्वेधा द्रव्यगुणपर्यायभेदात्स्वभावविभाव-भेदाच्च ।८।

अर्थ– पर्याय दो प्रकारके होते हैं— १ द्रव्यपर्याय, २ गुणपर्याय और २ स्वभावपर्याय, २ विभावपर्यायके भेदसे।

यथा नारकतिर्यक्सुरनरसिद्धा जीवस्य द्रव्यपर्यायाः ।९।

अर्थ– जैसे नारक, तिर्यञ्च, देव, मनुष्य व सिद्ध प्रभु ये जीवकी द्रव्यपर्यायें हैं।

शब्दबन्धसौक्ष्मस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योताः पुद्गलानाम् ।१०।

अर्थ– शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान,(आकार) भेद, (टूटना) अन्धकार, छाया, आतप, उद्योत ये पुद्गलोंकी द्रव्यपर्यायें हैं।

अणोरेकप्रदेशाकारः ।११।

अर्थ– परमाणुका एक प्रदेशके आकार वाला द्रव्यपर्याय है।

कालस्य च ।१२।

अर्थ– काल द्रव्यका भी एक प्रदेशाकार वाला द्रव्यपर्याय है।

धर्माधर्मयोरालोकविस्तारः ।१३।

अर्थ– धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्यका लोकप्रमाण विस्तार वाला द्रव्य-पर्याय है।

नभसोऽमिताकारः ।१४।

अर्थ– आकाशका असीम विस्तार वाला द्रव्यपर्याय है।

सम्यक्त्वादयो जीवस्य गुणपर्यायाः ।१५।

अर्थ- सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, कषाय आदिक जीवकी गुणपर्यायें हैं।

स्निग्धादयः पुद्गलस्य ।१६।

अर्थ- स्निग्ध रूक्षादिक पुद्गलकी गुणपर्यायें हैं।

स्वभावपरिणामो नियतो विविधनिमित्तानपेक्षत्वात् ।१७।

अर्थ- स्वभावपरिणमन नियत है क्योंकि स्वभावपरिणमन विविध निमित्तोंकी अपेक्षा—आश्रय बिना होता है।

विभावपरिणामो नियतोऽनियतश्च ।१८।

अर्थ- विभाव परिणाम अपेक्षासे दोनों प्रकारके हैं नियत और अनियत।

सकलविशेषज्ञाभ्यां ज्ञातत्वाद्यत्र यदा यदपि भवेत्तस्य भवनाच्च नियतः ।१९।

अर्थ- सर्वज्ञ व विशेषज्ञानी—अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी निमित्तज्ञानी आदि द्वारा भविष्य ज्ञात हो जानेसे और जहां पर जब जो भी होना होवे उसके होनेसे विभाव परिणाम नियत है।

सोऽपि प्रतिक्षणपरिणतिपूर्वकः ।२०।

अर्थ- वह विभाव परिणाम भी जिसे नियत सिद्ध किया है प्रतिसमय की परिणति (पुरुषार्थ विकास) पूर्वक होता है।

विशिष्टक्रमवर्तकगुणाभावादन्यन्निमित्तं प्राप्य भवनाच्चानियतः ।२१।

अर्थ- विभाव परिणमन नियत नहीं है। क्योंकि विशिष्ट (इसके बाद यह हो, इसके बाद यह हो ऐसे) क्रमको बनाने वाला कोई गुण द्रव्यमें नहीं है; तथा विभाव अन्य द्रव्योंका निमित्त विशेष पा कर होता है।

निमित्तसन्निधानेऽपि वस्तु स्वैकत्वगतमेव ।२२।

अर्थ- निमित्तोंकी उपस्थिति होने पर भी वस्तु अपनी एकतामें ही निष्ठ रहता है।

परस्य परैः सम्बन्धाभावात् ।२३।

अर्थ- क्योंकि पर पदार्थका किन्हीं भी अन्य पर पदार्थोंसे संबंध नहीं है।

अन्योऽन्यकर्तृत्वमुपचारः ।२४।

अर्थ- किसीको किसीका कर्ता कहना उपचार मात्र है।

स्वपरिणामकर्तृत्वं निश्चयः ।२५।

अर्थ- अपने ही परिणमनका कर्तापन समझना निश्चयनय है।

अशुद्धनिश्चयेनात्मनो रागादिकर्तृत्वम् ।२६।

अर्थ- आत्माके रागादिका कर्तापन अशुद्ध निश्चयनयसे है।

शुद्धनिश्चयेन स्वच्छभावकर्तृत्वम् ।२७।

अर्थ- शुद्ध निश्चयनयसे आत्मा स्वच्छ (निर्मल) भावका कर्ता है।

परमशुद्धनिश्चयेनाकर्तृत्वम् ।२८।

अर्थ- परम शुद्ध निश्चयनयसे आत्मा अकर्ता है।

परिणमनमेव कर्तृत्वम् ।२९।

अर्थ- पदार्थका परिणमन होना ही पदार्थका कर्तापन है।

विभावपरयोः कर्तृत्वबुद्धिरज्ञानम् ।३०।

अर्थ- विभाव भावका व परपदार्थका मैं कर्ता हूं इस बुद्धिका होना अज्ञान है।

कैवल्यपरयोर्भेदविज्ञानाभावात् ।३१।

अर्थ- क्योंकि आत्माके केवलभाव और पर भावों व पर पदार्थोंमें अज्ञानीके भेदविज्ञानका अभाव है।

भेदविज्ञानतः स्वस्याकर्तृत्वावधारणे सति पुनरभेदज्ञान-स्वभावस्थैर्यं शिवोपायः ।३२।

अर्थ- भेदविज्ञानके बलसे अपनेके अकर्तापनका निश्चय होने पर फिर अभेद ज्ञानस्वभावमें स्थिरता होना शिव, कल्याण, सुख या मोक्षका उपाय है।

स च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मक एव ।३३।

अर्थ- और वह शिवोपाय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता स्वरूप ही है।

सकलनयपक्षातिक्रान्तश्च ।३४।

अर्थ- और वह सर्वनय-पक्षोंसे अतिक्रान्त (पृथक्) है।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानंदवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे कर्तृकर्मत्वप्ररूपकस्तृतीयोऽध्यायः।

—:०ॐ०:—

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सूत्र—अनादिबद्धजीवकृतकषायं निमित्तीकृत्य प्रकृतित्वमापन्नो विस्रसोपचयः कर्म ॥१॥

अर्थ- अनादिकालसे बद्ध जीवके द्वारा किये गये कषायोंके निमित्तसे प्रकृतिपनको प्राप्त हुआ विस्रसोपचयरूप पुद्गल कर्म है।

सूत्र—तल्लोकबुद्धेर्द्विविधं, पुण्यं पापं च ॥२॥

अर्थ- वह कर्म लोकबुद्धिकी अपेक्षासे २ प्रकार का है—१ पुण्य कर्म, २ पाप कर्म।

सूत्र—प्रत्येकं द्विधा ॥३॥

अर्थ— प्रत्येक कर्म अर्थात् पुण्य और पाप दो दो प्रकारका है—

सूत्र—चेतनाचेतनाभ्यां भावद्रव्याभ्यां वा ॥४॥

अर्थ— चेतन और अचेतनके भेदसे अथवा भाव और द्रव्यके भेदसे वे दो दो प्रकारके हैं— १ चेतन पुण्य, २ अचेतन पुण्य। १ चेतन पाप, २ अचेतन पाप। अथवा १ भाव पुण्य; २ द्रव्य पुण्य। १ भाव पाप, २ द्रव्य पाप।

सूत्र—सातादिविकल्पो भावपुण्यम् ॥५॥

अर्थ— साता आदि रूप परिणामका भाव पुण्य कहते हैं।

सूत्र—तन्निमित्तभूतं कर्म द्रव्यपुण्यम् ॥६॥

अर्थ— सातादि परिणामोंको निमित्तभूत कर्म द्रव्य पुण्य है।

सूत्र—असातादिविकल्पो भावपापम् ॥७॥

अर्थ— असाता आदि परिणामोको भाव पाप कहते हैं।

सूत्र—तन्निमित्तभूतं कर्म द्रव्यपापम् ॥८॥

अर्थ— असाता आदिरूप परिणामोंका निमित्तभूत कर्म द्रव्य पाप है।

सूत्र—कर्मत्वशक्तिर्वा भावः ॥९॥

अर्थ— अथवा ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्ममें जो कर्मत्व शक्ति है उसे भाव कर्म कहते हैं।

सूत्र—हेतुस्वभावानुभवाश्रयाभेदात्सर्वं ह्येकम् ॥१०॥

अर्थ— वास्तवमें तो हेतु, स्वभाव, अनुभव व आश्रयका भेद न होने से सभी कर्म (पुण्य व पाप) एक ही हैं—समान ही हैं।

सूत्र—विकारास्रवणमास्रवः ॥११॥

बिकारके आनेको आस्रव कहते हैं।

सूत्र—स्वभावच्युतिर्बंधः ॥१२॥

अर्थ-अपने स्वभावसे च्युत हो जाने को बंध कहते हैं।

तावपि द्विविधौ ॥१३॥

अर्थ- आस्रव और बंध भी दो दो प्रकारके हैं।

सूत्र भावद्रव्याभ्यां जीवाजीवाभ्यां वा ॥१४॥

अर्थ- भाव व द्रव्यके भेदसे अथवा जीव व अजीव विषयकके भेदसे।

तत्त्रयं विकार्यविकारकोभयमास्राव्यास्रावकोभयं बंध्य-बंधकोभयं च ॥१५॥

अर्थ- वे तीनों—१ पुण्य पाप, २ आस्रव और ३ बंध दो दो प्रकार के हैं, विकार्य पुण्य पाप, विकारक पुण्य पाप। आस्राव्य आस्रव, आस्रावक आस्रव। बंध्य बंध, बंधक बंध। इस सूत्रमें उभय शब्द विशेष है जिसका अर्थ है दोनोंका उभय, इससे यह संकेत लेना चाहिए कि ये सर्वथा स्वतंत्र होकर किसी एक भेद रूप नहीं हैं, किन्तु परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा लेकर ही अपना अपना स्वरूप रखते।

ज्ञेयं हेयं सर्वम् ॥१६॥

अर्थ- उक्त भेद रूप पदार्थ हेय जानना चाहिए।

पुण्यपापास्रवबन्धविविक्त आत्मस्वभाव उपादेयः ॥१७॥

अर्थ-- पुण्य, पाप, आस्रव और बन्धसे विलक्षण (भिन्न) आत्माका स्वभाव उपादेय है।

तस्योपलब्धिः शुद्धोपयोगात् ॥१८॥

अर्थ - उस आत्मस्वभावकी प्राप्ति शुद्धोपयोगसे होती है।

स चाशुद्धोपेक्षणात् ।१९।

अर्थ- और वह शुद्धोपयोग अशुद्ध की उपेक्षासे प्रगट होता है।

तच्च भेदविज्ञानात् ।।२०।।

अर्थ- और वह अशुद्धके प्रति उदासीनता भेदविज्ञानसे होती हैं।

तज्ज्ञानस्वभावस्य शुचिस्वभावभूतध्रुवशरणानाकुलत्वादेरास्रवादीनां तद्विपरीतत्वादेश्च परीक्षणात् ।।२१।।

अर्थ- वह भेदविज्ञान ज्ञानस्वभाव पवित्र, स्वभावभूत, ध्रुव, शरण रूप, और निराकुल है, किन्तु आस्रवादि अशुचि, विभावरूप अध्रुव अशरण और आकुलतारूप हैं। इस प्रकार दोनोंकी परीक्षासे वह भेदविज्ञान प्रगट होता है।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानंदवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे आस्रवबन्धप्ररूपकः चतुर्थोऽध्यायः।

अथ पंचमोऽध्यायः

विकारानुत्पत्तिः संवरः ।।१।।

अर्थ- विकारोंकी उत्पत्ति न होना सो संवर है।

स मुख्यमुपादेयं तत्त्वम् ।।२।।

अर्थ- वह संवर भाव मुख्य उपादेय तत्त्व है।

मोक्षमूलत्वान्मोक्षेऽपि वर्तमानत्वाच्च ।।३।।

अर्थ- क्योंकि संवर मोक्षका मूल है और मोक्ष होनेपर भी संवर (कर्मोंका उत्पन्न न होना) बना रहता है।

तस्य मूलं स्वभावविभावयोर्भेदविज्ञानम् ।।४।।

अर्थ-संवरभावका कारण स्वभाव और विभावके भेदविज्ञान है।

तस्माच्छुद्धात्मरुचिः ॥५॥

अर्थ- भेदविज्ञानके अनंतर शुद्ध आत्मामें रुचि होती है।

ततः शुद्धात्मोपलम्भः ॥६॥

अर्थ- शुद्धात्मरुचिके अनंतर शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है।

ततोऽध्यवसानाभावः ॥७॥

अर्थ- शुद्ध आत्माकी प्राप्तिसे अध्यवसान भावोंका अभाव होता है।

ततो रागद्वेषमोहानामभावः ॥८॥

अर्थ- अध्यवसानके अभावसे रागद्वेष और मोह आदि विभावोंका अभाव होता है।

ततः कर्माभावः ॥९॥

अर्थ- रागद्वेष और मोहके अभावसे शेष कर्मोंका भी अभाव हो जाता है।

ततो नोकर्माभावः ॥१०॥

अर्थ- द्रव्यकर्मोंका अभाव होनेसे शरीरका अभाव हो जाता है।

ततः संसाराभावः ॥११॥

अर्थ- शरीरका अभाव होनेसे संसारका अभाव हो जाता है।

संसाराभावे सदा तेषामभावः ॥१२॥

अर्थ- संसारका अभाव होने पर पूर्वोक्त सब मलोंका सदा के लिए अभाव बना रहता है।

शुद्धात्मोपलम्भस्य सदा प्रवर्तमानत्वात् ॥१३॥

अर्थ- क्योंकि शुद्धात्माकी उपलब्धि सदा बनी रहती है।

संवरो द्वेधा ॥१४॥

अर्थ- संवर २ प्रकार का है।

भावद्रव्याभ्यां चेतनाचेतनाभ्यां वा ॥१५॥

अर्थ- १ भावसंवर २ द्रव्यसंवर अथवा १ चेतन संवर, २ अचेतन संवर।

तद्द्वयं संवार्यसंवारकोभयम् ॥१६॥

अर्थ- वे दोनों प्रकारके संवर दो दो प्रकारके हैं १ संवार्य संवर और २ संवारक संवर।

संवार्यो विभावानास्रवः ॥१७॥

अर्थ- विभावोंका न आना संवार्य भावसंवर है।

द्रव्यानास्रवश्च ॥१८॥

अर्थ- और द्रव्य कर्मोंका न आना संवार्य द्रव्यसंवर है।

संवारकः शुद्धपरिणामः ॥१९॥

अर्थ-विभावोंका न आना संवार्य भाव संवर है।

विभावनिमित्तत्वाभावश्च ॥२०॥

अर्थ- विभाव परिणामोंमें निमित्तपनेके अभाव होनेकी स्थितिसे रहना संवारक द्रव्यसंवर है।

संवारकसंवार्यत्वे जीवाजीवौ मुख्यौ ॥२१॥

अर्थ- संवारकपने में जीव संवर मुख्य है और संवार्यपनेमें अजीव संवर मुख्य है।

आदेयमिदं तत्त्वमानिर्विकल्पात् ॥२२॥

अर्थ- यह संवर तत्त्व निर्विकल्प अवस्थासे पहिले आदेयरूप याने ग्रहण योग्य है।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानंदवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे भावद्रव्यसंवरप्ररूपकः पंचमोऽध्यायः।

—:०※०:—

अथ षष्ठोऽध्यायः

विकृतिनिर्जरणं निर्जरा ॥१॥

अर्थ- विकारका झड़ जाना निर्जरा है।

सैव मोक्षोपायः ॥२॥

अर्थ- वह (संवर पूर्वक) निर्जरा ही मोक्षका उपाय है।

द्वेधा ॥३॥

अर्थ- निर्जरा दो प्रकारकी है।

भावद्रव्ययोः ॥४॥

अर्थ- १ भाव निर्जरा, २ द्रव्य निर्जरा।

वीतरागनिर्विकल्पसमाधिर्भावनिर्जरा ॥५॥

अर्थ- रागद्वेषरहित, निर्विकल्प समाधिभाव, भाव निर्जरा है। क्योंकि यह समाधिभाव विकारोंका अभाव करता है।

बंधानिमित्तं निष्फलं कर्मनिर्जरणं द्रव्यनिर्जरा ॥६॥

अर्थ- बंधका कारण न होते हुए फलरहित कर्मोंकी निर्जरा होना द्रव्यनिर्जरा है।

ते च परमार्थैकत्वद्रष्टुरेव ॥७॥

अर्थ- वे दोनों प्रकारकी निर्जरायें निर्विकल्प रूप आत्मतत्त्वको अनुभव करनेवालेके ही होती हैं।

स चान्तर्बहिर्निःशंकितः ॥८॥

अर्थ- और वह परमार्थद्रष्टा (सम्यग्दृष्टि) भीतर (अंतरंगमें) और बाहिर संदेह वा भयसे रहित होता है।

अनाकांक्षः ॥९॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टि आकांक्षाओंसे रहित होता है।

निर्विचिकित्सः ॥१०॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टि दुःखमें, धर्मात्माओंकी सेवामें, अथवा अपवित्र वस्तुओंमें ग्लानि नहीं करता।

अमूढः ॥११॥

अर्थ- वह आत्माके स्वरूपमें, अन्य तत्त्वोंमें व देव गुरु शास्त्र के स्वरूपमें, मूढ़तारहित होता है।

उपगूहकः ॥१२॥

अर्थ- वह अपने गुण और दूसरोंके दोषोंको प्रगट नहीं करता।

शिवस्थापकः ॥१३॥

अर्थ- वह परमार्थद्रष्टा, मोक्षमार्गसे भ्रष्ट होते हुए अपनेको तथा दूसरोंको मोक्ष मार्गमें स्थिर करने वाला होता है।

धर्मवत्सलः ॥१४॥

अर्थ- वह धर्म और धर्मात्माओंमें हार्दिक प्रेम रखता है।

प्रभावकश्च ॥१५॥

अर्थ- वह अंतरात्मा रत्नत्रय स्वरूप आत्माका व धर्मका प्रभाव प्रगट करने वाला होता है।

परस्थितिनिर्जरार्थं स्वभावविभावौ विभेद्य स्वभाव उपलंभनीयः ॥१६॥

अर्थ-परपदार्थमें रुके रहनेका अभाव करनेके लिये स्वभाव और विभावको भेदन करके स्वभावकी उपलब्धि करना चाहिये।

निरुपधिरुपादानकारणीभूत एकीकृतशुद्धपर्यायः स्वभावः ॥१७॥

अर्थ-स्वभाव उपाधिरहित उपादानकारणरूप और शुद्ध पर्याय की एकतारूप होता है।

आत्मनोऽसावनाद्यनंत हेतुकासाधारणज्ञानस्वभावः ॥१८॥

अर्थ– आत्माका यह स्वभाव अनादि अनंत अहेतुक और असाधारण ज्ञानरूप है ।

तत्स्थैर्याय सकलरागविकल्पास्त्याज्याः ॥१९॥

अर्थ– उस स्वभावमें उपयोगकी स्थिरताके लिये समस्त रागादि विकल्पोंको छोड़ देना चाहिए ।

तत्त्यागाय स्वभावो दृश्यः ॥२०॥

अर्थ– रागद्वेषादि विकल्पोंको त्यागनेके लिये निज आत्मस्वभावका अवलोकन करना चाहिये ।

तमभिप्रेत्य वाह्यसंयोगं निवर्तयेत् ॥२१॥

अर्थ– इस ही आशयको लेकर वाह्य पदार्थोंका संयोग दूर करना चाहिये ।

स्वभावमाश्रित्य स्वमिदंतयाऽनुभवेत् ॥२२॥

अर्थ– स्वभावका अवलम्बन करके यह ही मैं हूं इस प्रकार अपनेको अनुभव करना चाहिये ।

शुद्धं चिदस्मि ॥२३॥

अर्थ–"मैं शुद्धचैतन्यस्वरूप हूं" ऐसी भावना हो होकर निर्विकल्प अनुभूति रहना चाहिये ।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानन्दवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे भावद्रव्यनिर्जराप्ररूपकः—षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

पूर्णशुद्धस्वरूपसमवस्थानं मोक्षः ॥१॥

अर्थ- पूर्ण शुद्ध स्वरूपमें स्थिर अवस्थान होना मोक्ष है ।

तत्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकत्वम् ॥२॥

अर्थ- वह स्वरूपसमवस्थान सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता स्वरूप है ।

विशुद्धज्ञानदर्शनस्वरूपनिजशुद्धात्मश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥३॥

अर्थ- विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वरूप निजशुद्धात्माका श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है ।

अखण्डस्वरूपप्रतीत्या सह वस्तुज्ञप्तिः सम्यग्ज्ञानम् ॥४॥

अर्थ- अखण्ड स्वरूपकी प्रतीतिके साथ वस्तुका जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

विकृतिपरिहरणस्वभावेन ज्ञप्तिस्थितिः सम्यक्चारित्रम् ॥५॥

अर्थ- रागद्वेषादि विकारके परिहारपूर्वक स्वाभाविकरूपसे ज्ञानका परिणमन होना सम्यक् चारित्र है ।

निरंतरं त्रयाणामेकत्वं ज्ञातृत्वमात्रम् ॥६॥

अर्थ- भेदरहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता होने को ज्ञातृत्वमात्र कहते हैं ।

उपधिमोचनं वा मोक्षः ॥७॥

अर्थ- अथवा उपाधि और औपाधिक भावोंका सर्वथा दूर हो जाना मोक्ष है ।

स बंधच्छेदात् ॥८॥

अर्थ- वैभाविक भावोंका अभाव बंधके अभावसे होता है।

स बंधभावारागात् ॥९॥

अर्थ- बंधका विनाश बंधरूप भावोंमें राग न होनेसे हो जाता है।

स बंधात्मनोः स्वभावभेदपरिज्ञानात् ॥१०॥

अर्थ- बंधभाव और आत्मतत्त्व इन दोनोंके स्वभावके भेद का परिज्ञान होनेसे बंधभावमें वैराग्य हो जाता है।

मोक्षो द्वेधा ॥११॥

अर्थ- मोक्ष २ प्रकार है।

द्रव्यभावाभ्याम् ॥१२॥

अर्थ- १ द्रव्य मोक्ष और २ भाव मोक्ष।

तावपि द्वेधा मोच्यमोचकभेदात् ॥१३॥

अर्थ- द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष ये दोनों दो दो प्रकारके हैं। १ मोच्य द्रव्य मोक्ष, २ मोचक द्रव्य मोक्ष तथा १ मोच्य भावमोक्ष २, मोचक भाव मोक्ष।

भूतार्थेन स्वैकत्वमेव ॥१४॥

अर्थ- भूतार्थदृष्टिसे मोक्ष निज स्वभावके एकत्वरूप ही है।

तद्ध्येयं फलञ्च ॥१५॥

अर्थ- निज स्वभावकी एकता ध्येयरूप एवं फलस्वरूप है।

शान्तस्वरूपम् ॥१६॥

अर्थ- वह स्वभावकी एकता शान्त स्वरूप है।

शुद्धपरिणतिगतो धर्मो वा ॥१७॥

अर्थ- अथवा शुद्ध परिणतिको प्राप्त हुआ आत्मस्वभावरूप धर्म ही मोक्ष या स्वभावकी एकता है।

स्वस्ति ॥१८॥

अर्थ- वह शिवस्वभाव एकत्व सबके कल्याणरूप हो। अथवा यही स्वाभाविक विकाश हो स्वस्ति=सु+अस्ति सर्व कल्याण रूप है।

इति श्रीमत्सहजानंदवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे भावद्रव्यमोक्षप्ररूपकः सप्तमोऽध्यायः।

अथ अष्टमोऽध्यायः

पर्यायतो नानात्मगुणस्थानानि ॥१॥

अर्थ- पर्यायदृष्टिसे आत्माके गुणोंके स्थान (श्रेणि) नाना प्रकार के हैं।

श्रद्धाचारित्रयोगैः ॥२॥

अर्थ- वे गुणस्थान श्रद्धा; चारित्र और योगके निमित्तसे होते हैं।

विपरीताभिनिवेशो मिथ्यात्वम् ॥३॥

अर्थ- वस्तुका जैसा स्वतंत्र स्वरूप है उससे विपरीत अभिप्रायका होना मिथ्यात्व गुणस्थान है।

तदनादिवद्धस्यानादि ॥४॥

अर्थ- अनादिकालसे मिथ्यात्वमें बँधे हुए जीवके अनादि मिथ्यात्व होता है।

सम्यक्त्वच्युतस्य सादि ॥५॥

अर्थ- सम्यक्त्वको प्राप्त करके फिर उससे च्युत होने वाले जीवके सादि मिथ्यात्व होता है।

सम्यक्त्वासादने सासादनम् ॥६॥

अर्थ– अनंतानुबंधी कषायके उदयसे उपशमसम्यक्त्व नष्ट हो जानेपर जब तक मिथ्यात्वमें नहीं आ पाता तब तक सम्यक्त्वकी विराधना रूप परिणामोंको सासादन सम्यक्त्व कहते हैं।

मिश्राभिनिवेशो मिश्रम् ॥७॥

अर्थ– सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे होने वाले मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप मिश्र परिणामको मिश्र गुणस्थान कहते हैं।

अविरतसम्यक्त्वम् ॥८॥

अर्थ– सम्यक्त्व होनेपर भी अणुव्रत व महाव्रत रहित परिणाम हों तो उसे अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान कहते हैं।

अंशतो विरतौ देशविरतिः ॥९॥

अर्थ– सम्यग्दर्शनसहित अणुव्रतरूप परिणामोंको देशविरत गुणस्थान कहते हैं।

सर्वतः प्रमादे च प्रमत्तविरतः ॥१०॥

अर्थ– पापोंसे पूर्ण विरक्त होनेपर भी संज्वलन कषायके तीव्र उदय होनेके कारण प्रमादरूप भाव हों तो उसे प्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

प्रमादरहितेऽप्रमत्तविरतः ॥११॥

अर्थ– सर्वविरतके प्रमादका अभाव हो जानेपर अप्रमत्तविरत गुणस्थान होता है।

स द्वेधा ॥१२॥

अर्थ– वह अप्रमत्तविरत गुणस्थान २ प्रकारका है।

स्वस्थानसातिशयभेदात् ॥१३॥

अर्थ– १ स्वस्थान अप्रमत्तविरत और २ सातिशय अप्रमत्तविरत।

प्रमत्ताप्रमत्तपरिवृत्तौ स्वस्थानी ॥१४॥

अर्थ– जो अप्रमत्तविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें परिवर्तित होता रहता है वह अप्रमत्तविरत स्वस्थान अप्रमत्त है।

सातिशयोऽधःकरणस्थः ॥१५॥

अर्थ– अधःकरण परिणामोंमें स्थित हो जानेवाला विरत भाव सातिशय अमप्रत्तविरत कहलाता है।

ततोऽपूर्वकरणश्चारित्रमोहस्योपशमकः क्षपको वा ॥१६॥

अर्थ– सातिशय अप्रमत्तविरतके अनन्तर चारित्रमोहका उपशम या क्षय प्रारम्भ करनेवाला परिणाम अपूर्वकरण गुणस्थान कहलाता है।

अनिवृत्तिकरणश्च ॥१७॥

अर्थ– चारित्रमोहका उपशम या क्षय करने वाले समान समयवर्ती जीवोंमें भेदरहित सदृश परिणामोंको अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायश्च ॥१८॥

अर्थ– संज्वलन सूक्ष्म लोभ कषायके रहनेपर होने वाला विशुद्ध परिणाम सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहलाता है।

उपशान्तमोहः ॥१६॥

अर्थ– चारित्रमोहका पूर्ण उपशम कर चुकनेवाला वीतराग भाव, उपशान्तमोह गुणस्थान कहलाता है।

क्षीणमोहः ॥२०॥

अर्थ– चारित्रमोहका क्षय कर चुकने वाला वीतराग भाव क्षीणमोह गुणस्थान कहलाता है।

योगेन सहितः सर्वज्ञः सयोगःकेवली ॥२१॥

अर्थ- योगोंसे सहित किन्तु सकल द्रव्य गुण पर्यायोंका ज्ञाता परमात्मा सयोग केवली है और उनकी शुद्ध परिणतिको सयोग केवली गुणस्थान कहते हैं।

रहितोऽयोगः ॥२२॥

अर्थ- योगसे रहित सर्वज्ञ अरहन्त परमात्माको अयोगकेवली कहते हैं और उनके पूर्ण यथाख्यातचारित्ररूप परिणामोंको अयोग केवली गुणस्थान कहते हैं।

गुणस्थानानीमानि क्रमाक्रमोभयरूपेण यथागमं योज्यानि

अर्थ- सिद्ध भगवान् उन गुणस्थानोंसे अतीत है।

तेभ्योऽतीतः सिद्धः ॥२४॥

अर्थ- ये सब गुणस्थान जीवोंमें क्रमसे, अक्रमसे अथवा क्रम और अक्रम दोनों रूपसे आगमके अनुसार लगा लेना चाहिये।

सर्वतः शुद्धः ॥२५॥

अर्थ- सिद्ध भगवान् सब तरहसे पूर्ण निर्मल हैं। उनमें कोई भेद नहीं है।

ॐ नमः सिद्धं ॥२६॥

अर्थ-गुणस्थानवृद्धिके फलस्वरूप गुणस्थानातीत सिद्ध प्रभुको (उनके अनुकूल होनेके लिये) नमस्कार हो।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानन्दवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे गुणस्थानसंकेतकोऽष्टमोऽध्यायः।

अथ नवमोऽध्यायः

सर्वार्थेषु सारः समयः ॥१॥

अर्थ-सर्व पदार्थोंमें श्रेष्ठ पदार्थ आत्मा है।

सोऽनन्तशक्तिकः ॥२॥

अर्थ-वह अनन्त शक्तिमान् है।

तत्र ज्ञानं मुख्यम् ॥३॥

अर्थ- उन अनन्त शक्तियोंमें ज्ञान गुण मुख्य है।

सर्वचेतकत्वात् ॥४॥

अर्थ- क्योंकि ज्ञान अपनेको, आत्मगुणों व पर्यायोंको और दूसरे सब पदार्थों व उनकी गुणपर्यायोंको जानने वाला है।

व्यक्तौ द्वेधा ॥५॥

अर्थ- व्यक्तरूपमें वह ज्ञान दो प्रकारका है।

सम्यग्मिथ्याभेदात् ॥६॥

अर्थ- १ सम्यक्ज्ञान, २ मिथ्याज्ञान।

असम्यक्त्वं मिथ्या ॥७॥

अर्थ- सम्यक्त्वके अभावमें होने वाला ज्ञान मिथ्या कहलाता है।

सम्यक्त्वे सम्यक् ॥८॥

अर्थ- सम्यक्त्व होनेपर ज्ञान सम्यक् कहलाता है।

वस्तुतो ज्ञप्तिरेव ॥९॥

अर्थः-वस्तुतः ज्ञान न सम्यक है और न मिथ्या है। वह तो मात्र जानन स्वरूप है।

सम्यग्ज्ञानानि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ॥१०॥

अर्थ– सम्यग्ज्ञान ५ तरह के हैं—१ मतिज्ञान; २ श्रुतज्ञान ३ अवधि-ज्ञान; ४ मनःपर्ययज्ञान और ५ केवलज्ञान।

तत्र चत्वारि विकलानि ॥११॥

अर्थ– उन पांच सम्यग्ज्ञानोंमें से पहले के चार ज्ञान अपूर्ण ज्ञान है।

सकलं केवलम् ॥१२॥

अर्थ– पूर्णज्ञान केवलज्ञान है।

तन्निरन्तरं प्रतिक्षणवर्ति ज्ञानस्वभावोपादानम् ॥१३॥

अर्थ–ज्ञानस्वभाव जिसका उपादान है ऐसा केवलज्ञान निरंतर रहता और प्रतिक्षण वर्तता है।

सर्वपर्यायेष्वेकरूपमखण्डं ज्ञानं शुद्धम् ॥१४॥

अर्थ– पांचों ही ज्ञान ज्ञानसामान्यकी पर्यायें हैं। उन पांचों ही जाति वाले सब पर्यायोंमें स्वभावसे एकरूप अखंड जो ज्ञानमात्र भाव है वह विशुद्धज्ञान है।

तदनादि ॥१५॥

अर्थ–वह विशुद्ध सामान्य ज्ञान आदिरहित है।

अनन्तम् ॥१६॥

अर्थ– वह विशुद्धज्ञान अन्तरहित है।

अहेतुकम् ॥१७॥

अर्थ– वह विशुद्ध ज्ञान किसी भी कारणसे उत्पन्न हुआ नहीं है, स्वयं से है।

विशेषतोऽभेदषट्कारकविषयम् ॥१८॥

अर्थ– विशेषदृष्टिसे विचारनेपर वह सामान्यज्ञान अभिन्न छह

कारकोंसे पहिचाना जा सकता है।

परपरिणत्या परिणतिशून्यम् ॥१९॥

अर्थ– वह दूसरे पदार्थकी परिणतिसे परिणमन नहीं करता।

स्वपरिणामेन परिणन्तृ ॥२०॥

अर्थ– वह ज्ञान अपनी परिणतिसे ही परिणमता है।

सर्वशक्तिगर्भम् ॥२१॥

अर्थ– वह विशुद्धज्ञान समस्त आत्मशक्तियोंको अपनेमें व्यापे हुए है।

सामान्यतः स्वलक्षणमात्रम् ॥२२॥

अर्थ– सामान्यदृष्टिसे वह विशुद्धज्ञान अपने स्वरूपमात्र है।

कर्तृभोक्त्रादिभावरहितम् ॥२३॥

अर्थ– वह विशुद्धज्ञान कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि भावों से रहित है।

विकृतिप्रकृत्यकल्पितम् ॥२४॥

अर्थ– वह विशुद्धज्ञान संसार और मोक्षकी कल्पना व रचनासे परे है।

ज्ञानमयत्वादात्मैव तथा ॥२५॥

अर्थ– उस विशुद्ध ज्ञानमय आत्माका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

तच्छ्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२६॥

अर्थ– उस विशुद्धज्ञान मय आत्माका श्रद्धान होना सम्यग्ज्ञान है।

तदनुभूतिः सम्यग्ज्ञानम् ॥२७॥

अर्थ–उस विशुद्धज्ञानमय आत्माका अनुभव होना सम्यग्दर्शन है।

तत्स्थैर्यं सम्यक्चारित्रम् ॥२८॥

अर्थ– विशुद्ध ज्ञानमय आत्माके अनुभवकी स्थिरताको सम्यक्चारित्र कहते हैं।

शुद्धं शुद्धंस्तत्स्फूर्जतु ॥२६॥

अर्थ– परतत्त्वोंसे भिन्न होनेसे शुद्ध एवं स्वयंमें भेद न होनेसे शुद्ध वह सहज ज्ञान स्फुरित होओ।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानंदवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे विशुद्धज्ञानप्ररूपको नवमोऽध्यायः।

—:o❋o:—

अथ दशमोऽध्यायः

ज्ञानवृत्तिः संयमः ॥१॥

अर्थ– आत्माका ज्ञानमात्र परिणमन होना संयम है।

विशुद्धद्रष्टुः शुभरागप्रवृत्तिरपि संयमः ॥२॥

अर्थ– जिसने विशुद्ध चैतन्यभावका दर्शन किया है ऐसे अन्तरात्माके शेष बचे हुए शुभ रागसे होने वाली प्रवृत्ति भी संयम कहलाता है।

संयमः पञ्चधा ॥३॥

अर्थ– वह संयम ५ प्रकारका है।

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातसंयमभेदात् ॥४॥

अर्थ– १ सामायिकसंयम, २ छेदोपस्थापनासंयम, ३ परिहारविशुद्धि संयम, ४ सूक्ष्मसाम्परायसंयम और ५ यथाख्यातसंयम।

बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहविरतसाम्यभावः सामायिकः ॥५॥

अर्थ-- बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहसे विरत आत्माके समताभाव (अभेदसंयम) को सामायिक संयम कहते हैं।

हिंसादिविरतश्छेदोपस्थापकः ॥६॥

अर्थ-- हिंसा आदि पांच पापोंसे विरत भावों या भेदरूप संयमको छेदोपस्थापनासंयम कहते हैं।

स च भेदसंयमः ॥७॥

अर्थ-- वह छेदोपस्थापनासंयम भेदरूप संयम है।

बुद्धिपूर्वकोऽयमेव ॥८॥

अर्थ-- यह संयम ही बुद्धिपूर्वक धारण किया जाता है।

समितिगुप्तिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजया भेदसंयमेऽन्तर्गता अभेदस्पर्शिनः ॥९॥

अर्थ-- समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा (भावना) और परीषहजय ये सब भेद भेदसंयममें अन्तर्गत हैं तथा ये सभी भेद संयम अभेदसंयममें लगनेके प्रयत्नरूप हैं।

सर्वे एते जोषितव्या आनिर्विकल्पसंयमात् ॥१०॥

अर्थ-- ये सभी भेदसंयम निर्विकल्पसंयमसे पहिले विधिपूर्वक पालन किये जाना चाहिये।

ऋद्धिविशेषजातः प्राणिपीडापरिहारप्रवणः परिहार-विशुद्धिः ॥११॥

अर्थ-- विशेष ऋद्धिसे उत्पन्न हुआ और प्राणियोंकी पीड़ाका पूरा परिहार करनेवाला परिहारविशुद्धि संयम है।

सूक्ष्मलोभे विशुद्धिः सूक्ष्मसाम्परायः ॥१२॥

अर्थ-- संज्वलन सूक्ष्म लोभके रहजाने पर जो विशुद्ध परिणाम है

उसे सूक्ष्मसाम्परायसंयम कहते हैं ।

निरुपधिस्वभावख्यातिर्यथाख्यातः ॥१३॥

अर्थ- उपाधिरहित शुद्धस्वभावका विकाश होना यथाख्यात संयम है ।

तदर्थं संयमः सेव्यः ॥१४॥

अर्थ-- शुद्ध आत्मस्वभावके विकाशके लिये ही संयमका सेवन करना चाहिये ।

ततः संवरनिर्जरे ॥१५॥

अर्थ-- संयमसे विभाव भावों व कर्मोंका संवर और निर्जरण होता है ।

ततः सर्वपरभावविमुक्तेर्मोक्षः ॥१६॥

अर्थ-- संवर और निर्जरा से समस्त परभावों और कर्मोंके सर्वथा अभाव होनेसे मोक्ष हो जाता है ।

स सहजज्ञानानन्दस्वरूपः स्वत एव ॥१७॥

अर्थ- वह मोक्ष परिणमन स्वतः ही स्वाभाविक ज्ञान और आनन्द स्वरूप है ।

इति श्रीमदध्यात्मयोगिसहजानंदवर्णिविरचिते स्वतत्त्वाधिगमे अध्यात्मसूत्रे संयमप्ररूपको दशमोऽध्यायः ।

—:o:—

पूज्य श्री मनोहरवर्णी 'सहजानन्द' विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

❀ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ❀

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः, प्रापुर्लभन्त अचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयांति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वयमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
सद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनंदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्रीमनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ॥

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥